प्रवर्तन निदेशक

बनाम

मेसर्स एम.सी.टी.एम. कॉरपोरेशन प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य

19 जनवरी, 1996

[डॉ. ए.एस. आनंद तथा फैज़ान उद्दीन, न्यायमूर्ति]

विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 – धारा 10(1)(क), 10(2) – विदेशी मुद्रा को स्वदेश न लाना – अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन – दंड अधिरोपण न्यायसंगत – दोषपूर्ण मनःस्थिति आवश्यक नहीं।

धारा 23(1)(क) – धारा 23(1)(क) के अधीन कार्यवाही न्यायनिर्णयनात्मक प्रकृति की है, आपराधिक कार्यवाही नहीं।

उत्तरदाता, एक निजी सीमित कंपनी तथा उसके निदेशक, मलेशिया में स्थित और उनके स्वामित्वाधीन उस विदेशी मुद्रा को, जिसे भारत में प्राप्त करने का उन्हें अधिकार था, भारत में लाने के लिए पंद्रह वर्षों से अधिक समय तक कोई कार्रवाई अथवा कदम उठाने में विफल रहे।

प्रवर्तन निदेशालय ने उत्तरदाताओं के विरुद्ध कार्यवाही प्रारंभ की। उत्तरदाताओं को विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 की धारा 10(1)(क) के उपबंधों का उल्लंघन करने का दोषी पाया गया तथा कंपनी एवं उसके निदेशकों दोनों पर दंड अधिरोपित किया गया।

उत्तरदाताओं द्वारा अपीलीय बोर्ड के समक्ष अपीलें प्रस्तुत की गईं। अपीलीय बोर्ड ने यह माना कि उपबंधों का उल्लंघन तकनीकी प्रकृति का था और दंड की राशि कम कर दी।

उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत अपीलें स्वीकार कर ली गईं। उच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ यह अभिनिर्धारित किया कि विभाग अथवा अपीलीय बोर्ड द्वारा दोषपूर्ण मनःस्थिति के अस्तित्व का कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया है, अतः विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 की धारा 23(1)(क) के अंतर्गत दंड अधिरोपित किया जाना न्यायसंगत नहीं था। उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि धारा 10(1) के अधीन उल्लंघन तब तक पूर्ण नहीं माना जा सकता जब तक कि भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा धारा 10(2) के अंतर्गत जारी निर्देशों का भी उल्लंघन न हुआ हो।

प्रवर्तन निदेशालय द्वारा प्रस्तुत यह अपील इसी के विरुद्ध है।

अपील स्वीकार करते हुए, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :

1. आपराधिक विधि में जिस प्रकार दोषपूर्ण मनःस्थिति को समझा जाता है, वह विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 की धारा 10 के उपबंधों के उल्लंघन के लिए धारा 23(1)(क) के अधीन किसी दोषी व्यक्ति को दंडित करने हेतु आवश्यक तत्व नहीं है। धारा 23(1)(क) के अधीन दंड उस समय ही आकर्षित हो जाता है जब धारा 10(1)(क) द्वारा परिकल्पित वैधानिक दायित्व के उल्लंघन की स्थापना हो जाती है। दोषकर्ता का उल्लंघनकारी आचरण स्वयं उसकी दोषसिद्धि स्थापित करता है, जिससे विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 की धारा 23(1)(क) के उपबंध आकर्षित हो जाते हैं और इसके लिए दोषपूर्ण मनःस्थिति के अस्तित्व का पृथक प्रमाण अपेक्षित नहीं है।[225-जी, 222-जी]

कॉर्पस ज्यूरिस सेकुन्डम (खंड 85, पृष्ठ 580, कंडिका 1023), संदर्भित।

2. धारा 10 की उपधाराएँ (1) और (2) दो भिन्न परिस्थितियों से संबंधित हैं। अतः यह मानने का कोई आधार नहीं है कि धारा 10(1) के अधीन उल्लंघन तब तक संभव नहीं है जब तक कि

धारा 10(2) के अंतर्गत जारी निर्देशों का उल्लंघन न हुआ हो। दोनों उपधाराएँ पृथक क्षेत्रों में कार्य करती हैं और उपधारा (2) के अंतर्गत निर्देशों का जारी किया जाना तथा उनका उल्लंघन, उपधारा (1) में परिकल्पित उल्लंघन को स्थापित करने के लिए अनिवार्य शर्त नहीं है। दूसरी ओर, धारा 10 की उपधारा (1) की अपेक्षाओं का पालन न किया जाना भारतीय रिज़र्व बैंक को उपधारा (2) के अंतर्गत विशिष्ट अथवा सामान्य निर्देश जारी करने में सक्षम बनाता है। भारत में प्राप्त होने योग्य विदेशी मुद्रा को भारत में लाने का दायित्व एक वैधानिक दायित्व है और यह इस बात पर निर्भर नहीं करता कि भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा धारा 10(2) के अधीन इस संबंध में कोई विशिष्ट निर्देश जारी किया गया है अथवा नहीं। [227-डी-ई]

3. विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 की धारा 23(1)(क) के अधीन कार्यवाही न्यायनिर्णयनात्मक प्रकृति की है और आपराधिक कार्यवाही नहीं है। प्रवर्तन निदेशालय के अधिकारी तथा अन्य प्रशासनिक प्राधिकारी अर्ध-न्यायिक कृत्यों का निर्वहन करते हैं तथा अधिनियम के अधीन आरोपित दायित्व के उल्लंघन के लिए उल्लंघनकर्ता की उत्तरदायित्व का निर्धारण करते हैं। वे अधिनियम में निहित नागरिक दायित्व के उल्लंघन के लिए दंड अधिरोपित करते हैं, न कि किसी अपराध के किए जाने पर दंडादेश प्रदान करते हैं। इसलिए केवल इस कारण कि धारा 23(1)(क) में दंड का उपबंध है, उस धारा के अधीन कार्यवाही की प्रकृति न्यायनिर्णयनात्मक से परिवर्तित होकर आपराधिक अभियोजन नहीं बन जाती। [222-बी से 222-डी]

4. किसी नागरिक दायित्व के उल्लंघन पर विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 की धारा 23(1)(क) के अधीन दंड आकर्षित होता है और यदि यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि दोषकर्ता ने धारा 10 के उपबंधों का उल्लंघन किया है, तो धारा 23 के अधीन दंड का अधिरोपण तत्काल

आकर्षित हो जाता है, चाहे उल्लंघन किसी दोषपूर्ण आशय के साथ किया गया हो अथवा नहीं। [222-ई]

मक़बूल हुसैन बनाम बम्बई राज्य, **एआईआर 1953 उच्चतम न्यायालय 325 = [1953] एससीआर 730, संदर्भित।**

5. धारा 10(1) की योजना स्पष्ट रूप से यह इंगित करती है कि कोई भी व्यक्ति, जिसे विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का अधिकार है अथवा भारत में रुपये के रूप में उसके भुगतान का अधिकार है, ऐसा कोई कार्य न करे अथवा किसी कार्य को करने से विरत न रहे, और न ही ऐसा कोई कदम उठाए अथवा उठाने से विरत रहे, जिसका परिणाम यह हो कि उस विदेशी मुद्रा अथवा उसके रुपये में भुगतान की संपूर्ण या आंशिक प्राप्ति में विलंब हो जाए अथवा वह पूर्णतः बंद हो जाए, सिवाय इसके कि भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा उसे विशेष रूप से अथवा किसी सामान्य निर्देश के माध्यम से ऐसा करने के लिए अधिकृत या अनुमति प्रदान की गई हो। विदेशी मुद्रा को भारत में प्राप्त करने का अधिकार उत्पन्न होने के पश्चात् उसे युक्तिसंगत अवधि के भीतर भारत में न लाए जाने पर उल्लंघन पूर्ण हो जाता है। "युक्तिसंगत अवधि" क्या होगी, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा तथा इस संबंध में कोई सामान्य सूत्र निर्धारित करना न तो संभव है और न ही वांछनीय। [226-ई-एफ]

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1996 की आपराधिक अपील संख्या 27

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा ए.ए.ओ. संख्या 636-640 / 1980 में दिनांक 9.3.1988 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध।

के.टी.एस. तुलसी, अतिरिक्त महाधिवक्ता, डॉ. आर.आर. मिश्रा, वी.के. वर्मा तथा एस.के. शर्मा — अपीलकर्ता की ओर से।

सी. रामकृष्ण — उत्तरदाता की ओर से।

अम्बरीष कुमार — उत्तरदाता संख्या 4 एवं 5 की ओर से।

न्यायालय का निर्णय डॉ. ए.एस. आनंद, न्यायमूर्ति द्वारा दिया गया।

अनुमति प्रदान की गई।

उत्तरदाता, एक निजी सीमित कंपनी तथा उसके निदेशकों के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही इस आधार पर प्रारंभ की गई कि उन्होंने विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 (जिसे आगे "अधिनियम, 1947" कहा गया है) की धारा 10(1)(क) के उपबंधों का उल्लंघन किया है। उत्तरदाताओं के विरुद्ध विभागीय मामले का सार यह था कि वे मलेशिया में स्थित उस विदेशी मुद्रा को, जिसे भारत में प्राप्त करने का उन्हें अधिकार था, भारत में नहीं लाए और इस प्रकार उन्होंने ऐसे कदम उठाने में विफलता बरती अथवा ऐसे कदम उठाने से विरत रहे जिनसे इस देश में विदेशी मुद्रा की प्राप्ति सुनिश्चित हो सकती थी। आरोपपत्र में प्रवर्तन निदेशालय द्वारा उत्तरदाताओं पर अधिनियम, 1947 के उपबंधों के दो उल्लंघनों का आरोप लगाया गया था। प्रथम आरोप नटराजा रबर एस्टेट की बिक्री से प्राप्त मलेशियाई डॉलर 62,186.42 तथा कंपनी द्वारा वर्ष 1960 में प्राप्त सामाजिक कल्याण पुरस्कार राशि मलेशियाई डॉलर 1,25,000 को भारत में न लाने से संबंधित था। द्वितीय आरोप कंपनी की कुआलालंपुर स्थित शाखा द्वारा संचालित व्यवसाय से अर्जित मलेशियाई डॉलर 3,56,222.44 के लाभ को भारत में न लाने से संबंधित था, जैसा कि 31.12.1972 को समाप्त वर्ष के लाभ-हानि विवरण में दर्शाया गया था। यह निर्विवाद था कि उक्त समस्त राशि कंपनी की थी तथा कंपनी ने उसे अपनी तुलन-पत्रिका तथा संबंधित वर्षों के आयकर विवरणों में प्रदर्शित भी किया था। यह भी निर्विवाद था कि उत्तरदाताओं ने भारतीय रिज़र्व बैंक से कोई विशेष अथवा सामान्य अनुमति प्राप्त नहीं की थी, जिसके द्वारा उन्हें मलेशिया

के कुआलालंपुर स्थित अपनी शाखा में उक्त विदेशी मुद्रा को भारत में लाए बिना रखने की अनुमति प्राप्त होती। उत्तरदाताओं के विरुद्ध प्रारंभ की गई विभागीय कार्यवाही में प्रवर्तन निदेशालय ने अपने दिनांक 19.9.1977 के आदेश द्वारा उत्तरदाताओं को दोनों आरोपों में दोषी ठहराया। प्रथम आरोप के संबंध में प्रत्येक निदेशक पर **रु. 4,000** तथा उत्तरदाता कंपनी पर **रु. 40,000** का दंड अधिरोपित किया गया। द्वितीय आरोप के संबंध में प्रत्येक निदेशक पर **रु. 20,000** तथा उत्तरदाता कंपनी पर **रु. 2,00,000** का दंड अधिरोपित किया गया, जो अधिनियम, 1947 की धारा 23(1)(क) के अधीन था। दिनांक 19.9.1977 के उक्त आदेश के विरुद्ध उत्तरदाताओं ने अपीलीय बोर्ड के समक्ष पाँच पृथक अपीलें प्रस्तुत कीं। बोर्ड ने यह मत व्यक्त किया कि यह ऐसा मामला नहीं था जिसमें विदेशी मुद्रा को किसी कपटपूर्ण उद्देश्य से गुप्त रूप से विदेश में रखा गया हो, यद्यपि उसे जानबूझकर और उद्देश्यपूर्वक कुआलालंपुर में बनाए रखा गया था। अतः बोर्ड ने माना कि उल्लंघन तकनीकी प्रकृति का था और परिणामस्वरूप दंड में कमी कर दी। प्रथम आरोप के संबंध में प्रत्येक निदेशक पर दंड घटाकर **रु. 2,000** तथा कंपनी पर **रु. 20,000** कर दिया गया। द्वितीय आरोप के संबंध में प्रत्येक निदेशक पर दंड घटाकर **रु. 5,000** कर दिया गया, जबकि कंपनी पर अधिरोपित दंड यथावत रखा गया। बोर्ड ने कंपनी तथा उसके निदेशकों की इस दलील को अस्वीकार कर दिया कि चूँकि अधिनियम की धारा 10 में विदेशी मुद्रा को भारत लाने के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई थी, इसलिए उन्हें किसी भी आरोप में दोषी नहीं ठहराया जा सकता। बोर्ड ने अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि विदेशी मुद्रा को भारत लाने की कोई विशिष्ट अवधि निर्धारित नहीं की गई है, तथापि इसका अभिप्राय यह है कि विदेशी मुद्रा को उस तिथि से, जिस दिन उसे प्राप्त करने का अधिकार उत्पन्न हुआ, **युक्तिसंगत अवधि** के भीतर भारत में लाया जाना चाहिए। कंपनी द्वारा अत्यधिक लंबा समय लेने को देखते हुए बोर्ड ने निष्कर्ष निकाला कि कंपनी विदेशी मुद्रा को युक्तिसंगत अवधि के भीतर

भारत में लाने में विफल रही। विदेशी मुद्रा उस तिथि से, जब उसे भारत में प्राप्त करने का अधिकार उत्पन्न हुआ था, **पंद्रह वर्षों से अधिक समय** बीत जाने के पश्चात भी भारत में नहीं लाई गई थी। इससे असंतुष्ट होकर उत्तरदाताओं (कंपनी एवं उसके निदेशकों) ने विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1973 की धारा 54 के अधीन मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष पाँच पृथक अपीलें प्रस्तुत कीं। दिनांक 9 मार्च, 1988 के निर्णय एवं आदेश द्वारा उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने सभी अपीलें स्वीकार कर लीं तथा प्रवर्तन निदेशालय द्वारा अधिरोपित और अपीलीय बोर्ड द्वारा संशोधित दंड को निरस्त कर दिया। उच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम, 1947 की धारा 10(1) एक स्वतंत्र धारा नहीं है और जब तक भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा धारा 10(2) के अधीन जारी किसी निर्देश का उल्लंघन न किया जाए, तब तक धारा 23(1)(क) के अधीन धारा 10(1)(क) के उल्लंघन के लिए कोई दंड अधिरोपित नहीं किया जा सकता। उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि विदेशी मुद्रा को भारत में न लाने के लिए उत्तरदाताओं को दंडित करने से पूर्व **दोषपूर्ण मनःस्थिति अथवा आपराधिक आशय** के अस्तित्व के संबंध में निष्कर्ष आवश्यक था। चूँकि वर्तमान मामले में प्रवर्तन निदेशालय अथवा अपीलीय बोर्ड द्वारा **दोषपूर्ण मनःस्थिति** के अस्तित्व का कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया था, इसलिए अधिनियम, 1947 की धारा 23(1)(क) के अधीन दंड अधिरोपित किया जाना न्यायोचित नहीं था। उच्च न्यायालय के उक्त आदेश की शुद्धता को चुनौती देते हुए प्रवर्तन निदेशालय द्वारा विशेष अनुमति से यह अपील प्रस्तुत की गई है।

हमारे विचारार्थ इस अपील में मुख्यतः दो प्रश्न हैं : **(1)** क्या **दोषपूर्ण मनःस्थिति** का अस्तित्व, धारा 10 के उल्लंघन को सिद्ध करने तथा उसे अधिनियम, 1947 की धारा 23 के अधीन दंडनीय ठहराने के लिए आवश्यक तत्व है? **(2)** क्या अधिनियम, 1947 की धारा 10(1)

एक स्वतंत्र उपबंध नहीं है और उसका उल्लंघन अपने आप में धारा 23(1)(क) के अधीन दंडनीय नहीं है, अथवा उसका उल्लंघन तभी माना जाएगा जब भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा धारा 10(2) के अधीन जारी किसी निर्देश का उल्लंघन हुआ हो?

इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए आवश्यक है कि पहले अधिनियम, 1947 की धारा 10 तथा धारा 23 के उन प्रासंगिक उपबंधों का उल्लेख किया जाए, जो उस समय (अर्थात् 1964 तथा 1973 के संशोधनों से पूर्व) प्रभावी थे। वे उपबंध इस प्रकार हैं :

धारा 10. विदेशी मुद्रा आदि प्राप्त करने के अधिकार वाले व्यक्तियों का कर्तव्य

(1) कोई भी व्यक्ति, जिसे किसी विदेशी मुद्रा को प्राप्त करने का अधिकार हो अथवा भारत के बाहर निवास करने वाले किसी व्यक्ति से भारत में रुपये के रूप में भुगतान प्राप्त करने का अधिकार हो, भारतीय रिज़र्व बैंक की सामान्य अथवा विशेष अनुमति के बिना ऐसा कोई कार्य न करेगा, अथवा किसी कार्य को करने से विरत नहीं रहेगा, और न ही ऐसा कोई कदम उठाएगा अथवा उठाने से विरत रहेगा, जिसका परिणाम निम्नलिखित में से कोई हो—

(क) उसके द्वारा उस विदेशी मुद्रा अथवा भुगतान की संपूर्ण या आंशिक प्राप्ति में विलंब हो जाए; अथवा

(ख) वह विदेशी मुद्रा अथवा भुगतान संपूर्णतः अथवा आंशिक रूप से उसके लिए प्राप्त करने योग्य न रहे।

(2) जहाँ कोई व्यक्ति किसी विदेशी मुद्रा अथवा रुपये में भुगतान के संबंध में उपधारा (1) की आवश्यकताओं का पालन करने में विफल रहता है, वहाँ भारतीय रिज़र्व बैंक उसे ऐसे निर्देश दे सकता है जो विदेशी मुद्रा अथवा भुगतान की प्राप्ति सुनिश्चित करने के उद्देश्य से उपयुक्त प्रतीत हों।

धारा 23. दंड और प्रक्रिया

(1) यदि कोई व्यक्ति धारा 4, धारा 5, धारा 9, धारा 10, धारा 12 की उपधारा (2), धारा 17, धारा 18क अथवा धारा 18ख के उपबंधों का अथवा उनके अधीन बनाए गए किसी नियम, निर्देश या आदेश का उल्लंघन करता है, तो वह—

(क) उस दंड का भागी होगा जो उस विदेशी मुद्रा के मूल्य के तीन गुने तक, जिसके संबंध में उल्लंघन हुआ है, अथवा पाँच हजार रुपये, इनमें से जो अधिक हो, से अधिक न हो और जिसे आगे वर्णित प्रक्रिया के अनुसार प्रवर्तन निदेशालय द्वारा अधिनिर्धारित किया जाए; अथवा

(ख) ....

23(1क) ....

23(1ख) ....

23क ....

23ख ....

23ग ....

23घ ....

23ङ ....

23च ....

23छ ....

23 ज. यदि कोई व्यक्ति प्रवर्तन निदेशक अथवा अपीलीय बोर्ड द्वारा अधिरोपित दंड का भुगतान करने में विफल रहता है, अथवा उनके किसी निर्देश या आदेश का पालन नहीं करता है, तो न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि होने पर उसे ऐसे कारावास से दंडित किया जा सकेगा जिसकी अवधि दो वर्ष तक हो सकती है, अथवा अर्थदंड से, अथवा दोनों से।

विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 की प्रस्तावना अधिनियम के सामान्य उद्देश्य की कुंजी प्रदान करती है। उसका उद्देश्य विदेशी मुद्रा संसाधनों के संरक्षण तथा उनके समुचित उपयोग के लिए विदेशी मुद्रा से संबंधित कुछ भुगतानों एवं लेन-देन का विनियमन करना है। यह अधिनियम विदेशी मुद्रा की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए बनाया गया है, जो भारत जैसे विकासशील देश के आर्थिक जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। चूँकि देश के विदेशी मुद्रा संसाधनों का संरक्षण एक अनिवार्य आवश्यकता है, इसलिए यह स्वाभाविक है कि कोई भी कार्य, चाहे वह सकारात्मक हो या नकारात्मक, जो इस देश को उस विदेशी मुद्रा के उपयोग से वंचित कर दे जिस पर उसका अधिकार है और जिसका उपयोग लोककल्याण के लिए किया जाना है, अधिनियम, 1947 के प्रासंगिक उपबंधों का उल्लंघन होगा तथा धारा 23(1)(क) के अधीन दंडनीय होगा। धारा 23(1)(क) विभिन्न धाराओं, जिनमें धारा 10 भी सम्मिलित है, अथवा उनके अधीन बनाए गए किसी नियम, निर्देश या आदेश के उल्लंघन के लिए दंड के एक प्रकार का उपबंध करती है। इसी पृष्ठभूमि में हम उपर्युक्त दोनों प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करते हैं।

प्रथम प्रश्न पर विचार करते हुए उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि धारा 23 एक दंडात्मक उपबंध है तथा धारा 23(1)(क) के अधीन कार्यवाही अर्ध-आपराधिक प्रकृति की है। इसलिए जब तक आपराधिकता सिद्ध न हो जाए, तब तक धारा 23(1)(क) के अधीन दंड अधिरोपित नहीं किया जा सकता। उच्च न्यायालय ने इस प्रकार यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 10 के अधीन अपराध के गठन के लिए दोषपूर्ण मनःस्थिति का अस्तित्व आवश्यक तत्व है

और जब तक अपराधियों की ओर से दोषपूर्ण मनःस्थिति की उपस्थिति के संबंध में निष्कर्ष न हो, तब तक अधिनियम, 1947 की धारा 23(1)(क) के अधीन कोई दंड अधिरोपित नहीं किया जा सकता। जो कारण आगे दिए जा रहे हैं, उनके आधार पर हम इस मत से सहमत नहीं हैं।

दोषपूर्ण मनःस्थिति मन की एक अवस्था है। आपराधिक विधि के अंतर्गत इसका अर्थ दोषपूर्ण आशय होता है और जब तक यह सिद्ध न हो जाए कि अभियुक्त के मन में अपराध करने का दोषपूर्ण आशय था, तब तक उसे अपराध का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। दंड प्रक्रिया संहिता तथा सामान्य उपबंध अधिनियम, 1897 के अंतर्गत "अपराध" का अर्थ ऐसा कोई कार्य या लोप है जिसे वर्तमान में प्रवृत्त किसी विधि द्वारा दंडनीय बनाया गया हो। अधिनियम, 1947 की धारा 23(1)(क) के अधीन कार्यवाही न्यायनिर्णायक प्रकृति की है और वह आपराधिक कार्यवाही नहीं है। प्रवर्तन निदेशालय के अधिकारी तथा अन्य प्रशासनिक प्राधिकारी अधिनियम द्वारा केवल न्यायनिर्णयन करने के लिए अधिकृत किए गए हैं। निस्संदेह, उन्हें न्यायिक ढंग से कार्य करना होता है तथा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का, जहाँ तक वे लागू हों, पालन करना होता है; किन्तु वे आपराधिक न्यायालयों के न्यायाधीश नहीं हैं जो किसी अभियुक्त का अपराध के लिए विचारण कर रहे हों। वे अर्ध-न्यायिक कार्य करते हैं और न्यायालय के रूप में नहीं, बल्कि प्रशासनिक तथा न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के रूप में कार्य करते हैं। उनके समक्ष होने वाली कार्यवाही में वे किसी अभियुक्त का किसी अपराध के लिए विचारण नहीं करते, बल्कि अधिनियम द्वारा आरोपित दायित्वों के उल्लंघन के लिए उल्लंघनकर्ता की देयता का निर्धारण करते हैं।

वे अधिनियम द्वारा निर्धारित दीवानी दायित्वों के उल्लंघन के लिए दंड अधिरोपित करते हैं, न कि किसी अपराध के लिए सजा प्रदान करते हैं। "दंड" शब्द का अर्थ अत्यंत व्यापक है। कभी-कभी इसका अर्थ दीवानी कार्यवाही में भी दंडात्मक उपाय के रूप में किसी राशि की वसूली

होता है। ऐसा अधिरोपण जो प्रतिपूरक प्रकृति का नहीं होता, उसे भी दंड कहा जाता है। जब कोई न्यायनिर्णायक अधिकारी दंड अधिरोपित करता है, तो वह न्यायनिर्णायक कार्यवाही में किया जाता है, न कि किसी अभियुक्त के विरुद्ध आपराधिक न्यायालय में अभियोजन चलाकर अपराध सिद्ध होने के परिणामस्वरूप अर्थदंड के रूप में। अतः केवल इस कारण कि धारा 23(1)(क) में दंड का उपबंध है, उस धारा के अधीन कार्यवाही की प्रकृति न्यायनिर्णायक से परिवर्तित होकर आपराधिक अभियोजन नहीं हो जाती। अधिनियम के अधीन न्यायनिर्णायक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दोषसिद्धि का आदेश नहीं होता, बल्कि अपराधी द्वारा दीवानी दायित्व के उल्लंघन के निर्धारण का आदेश होता है। इस प्रकार, दीवानी दायित्व का उल्लंघन ही धारा 23(1)(क) के अधीन दंड को आकर्षित करता है और यदि यह निष्कर्ष निकलता है कि दोषी व्यक्ति ने अधिनियम, 1947 की धारा 10 का उल्लंघन किया है, तो धारा 23 के अधीन दंड स्वतः अधिरोपित हो जाएगा, चाहे उल्लंघन किसी दोषपूर्ण आशय के साथ किया गया हो अथवा नहीं। अतः, आपराधिक मामले के विपरीत, जहाँ अभियोजन के लिए यह सिद्ध करना आवश्यक होता है कि अभियुक्त के पास अपराध करने का आवश्यक दोषपूर्ण आशय था, धारा 10 के उल्लंघन से संबंधित मामलों में प्रवर्तन निदेशालय का दायित्व तभी पूरा माना जाएगा जब यह प्रदर्शित कर दिया जाए कि दोषी व्यक्ति का दोषारोपण योग्य आचरण धारा 10 के उपबंधों के जानबूझकर किए गए उल्लंघन द्वारा स्थापित हो गया है। दोषी व्यक्ति का उल्लंघनकारी आचरण स्वयं ही उसके **दोषारोपण योग्य आचरण** को स्थापित करता है और इसके लिए दोषपूर्ण मनःस्थिति के अस्तित्व का कोई अतिरिक्त प्रमाण आवश्यक नहीं है। धारा 23(1)(क) के अधीन प्राधिकारियों द्वारा न्यायनिर्णयन तथा दंड अधिरोपित किए जाने के पश्चात भी, यदि दोषी व्यक्ति का कार्य दंड विधि के अधीन पृथक अपराध का गठन करता है, तो उसके विरुद्ध उस अपराध के लिए विचारण एवं दंड संभव है और ऐसी स्थिति में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 20(2) में निहित निषेध

लागू नहीं होगा। दंड का भुगतान न करना स्वयं धारा 23ज के अधीन अभियोजन को आकर्षित करता है और उस अपराध के लिए न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि होने पर कारावास भी दिया जा सकता है।

मक़बूल हुसैन बनाम बम्बई राज्य, **एआईआर 1953 उच्चतम न्यायालय 325 = [1953] एससीआर 730** में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने, समुद्री सीमा शुल्क अधिनियम तथा विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 के अधीन कार्यवाहियों की प्रकृति पर विचार करते हुए, संविधान के अनुच्छेद 20(2) के आधारभूत सिद्धांत एवं उसके क्षेत्राधिकार का परीक्षण किया। उस मामले में अपीलकर्ता के सांताक्रूज़ हवाई अड्डे पर उतरने के समय उसके कब्जे से स्वर्ण बरामद हुआ था। सीमा शुल्क अधिकारियों द्वारा उसे रोककर उसकी तलाशी ली गई और उसके कब्जे से स्वर्ण जब्त कर लिया गया। अधिनियम की धारा 167(8) के अधीन सीमा शुल्क अधिकारियों द्वारा कार्यवाही की गई और साक्ष्य अभिलिखित करने के पश्चात् एक आदेश पारित किया गया, जिसके द्वारा स्वर्ण को जब्त कर लिया गया तथा समुद्री सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 183 के अधीन स्वामी को उस जब्ती के स्थान पर अर्थदंड अदा करने का विकल्प प्रदान किया गया।

चूँकि कोई भी व्यक्ति स्वर्ण को छुड़ाने के लिए आगे नहीं आया, इसलिए बम्बई के मुख्य प्रेसीडेंसी दंडाधिकारी के न्यायालय में अपीलकर्ता के विरुद्ध यह आरोप लगाते हुए परिवाद दायर किया गया कि उसने विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 की धारा 8 के अधीन अपराध किया है। इसके पश्चात् अपीलकर्ता ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन बम्बई उच्च न्यायालय में याचिका दायर कर परिवाद को निरस्त करने की प्रार्थना की और यह तर्क दिया कि मुख्य प्रेसीडेंसी दंडाधिकारी के न्यायालय में उसके विरुद्ध चलाया गया अभियोजन संविधान के अनुच्छेद 20(2) द्वारा प्रदत्त उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन है।

उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता का यह मामला था कि मुख्य प्रेसीडेंसी दंडाधिकारी के समक्ष दायर परिवाद भी इस आधार पर था कि वह भारतीय रिज़र्व बैंक की अनुमति के बिना स्वर्ण भारत में लाया था, और इन्हीं आरोपों के आधार पर सीमा शुल्क अधिनियम के अधीन कार्यवाही में उसका स्वर्ण पहले ही जब्त किया जा चुका था। अतः उसे एक ही अपराध के लिए दो बार दंडित किया जा रहा था, जो अनुच्छेद 20(2) के आलोक में विधि द्वारा अनुमेय नहीं था। उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि अपीलकर्ता अनुच्छेद 20(2) का संरक्षण तभी प्राप्त कर सकता है जब वह जब्त किए गए स्वर्ण का स्वामी सिद्ध हो। अतः मुख्य प्रेसीडेंसी दंडाधिकारी को पहले इस तथ्यात्मक प्रश्न का निर्धारण करने का निर्देश दिया गया। कुछ साक्ष्य अभिलिखित करने के पश्चात् मुख्य प्रेसीडेंसी दंडाधिकारी ने यह निष्कर्ष दिया कि अपीलकर्ता स्वर्ण का स्वामी था। किन्तु उच्च न्यायालय ने उस निष्कर्ष को पलट दिया और अनुच्छेद 20(2) के संरक्षण का लाभ देने से इंकार करते हुए मामले को विधि के अनुसार विचारण हेतु पुनः विचारण न्यायालय को भेज दिया। विशेष अनुमति से अपीलकर्ता ने इस न्यायालय में अपील प्रस्तुत की। इसी पृष्ठभूमि में संविधान पीठ ने यह विचार किया कि क्या स्वर्ण की जब्ती के लिए सीमा शुल्क अधिकारियों द्वारा चलाई गई कार्यवाही को अपीलकर्ता के विरुद्ध अभियोजन कहा जा सकता है। यदि यह माना जाता कि सीमा शुल्क अधिकारियों द्वारा स्वर्ण की जब्ती की कार्यवाही में अपीलकर्ता का अभियोजन हुआ था, तो यह तर्क देने की कोई गुंजाइश नहीं रहती कि स्वर्ण की जब्ती तथा उसके स्थान पर अर्थदंड अदा करने के विकल्प के माध्यम से उसे दंडित नहीं किया गया था। न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 20(2) द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार के संदर्भ में द्वितीय दंडन निषेध सिद्धांत के क्षेत्र, प्रयोजन तथा प्रयोज्यता का विस्तृत परीक्षण किया और अभिनिर्धारित किया :

"यह स्पष्ट है कि किसी नागरिक द्वारा अनुच्छेद 20(2) के संरक्षण का लाभ लेने के लिए यह आवश्यक है कि उसी अपराध के संबंध में उसके विरुद्ध विधि के न्यायालय अथवा ऐसे अधिकरण के समक्ष अभियोजन और दंड हुआ हो, जिसे विधि द्वारा शपथ पर दिए गए साक्ष्य के आधार पर विवादित प्रश्नों का न्यायिक निर्णय करने का अधिकार प्राप्त हो तथा जिसे विधि द्वारा शपथ दिलाने की शक्ति भी प्राप्त हो। यह संरक्षण ऐसे अधिकरण के समक्ष की गई विभागीय अथवा प्रशासनिक जाँच पर लागू नहीं होगा, चाहे वह विधि द्वारा स्थापित ही क्यों न हो, यदि उसे शपथ पर दिए गए विधिक साक्ष्य के आधार पर कार्य करने की आवश्यकता न हो। अनुच्छेद 20 की शब्दावली तथा उसमें प्रयुक्त शब्द— 'दोषसिद्ध', 'अपराध के रूप में आरोपित कृत्य का किया जाना', 'दंड के अधीन किया जाना', 'अपराध का किया जाना', 'अभियोजित और दंडित', 'किसी अपराध का अभियुक्त'— यह संकेत करते हैं कि वहाँ परिकल्पित कार्यवाहियाँ विधि के न्यायालय अथवा न्यायिक अधिकरण के समक्ष चलने वाली आपराधिक प्रकृति की कार्यवाहियाँ हैं। इस संदर्भ में 'अभियोजन' का अर्थ होगा उस अपराध को सृजित करने वाली तथा उसकी प्रक्रिया को विनियमित करने वाली विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार विधि के न्यायालय अथवा न्यायिक अधिकरण के समक्ष आपराधिक प्रकृति की कार्यवाही का प्रारंभ किया जाना।"

इसके पश्चात् न्यायालय ने यह निर्धारित करने के लिए विभिन्न कसौटियाँ निर्धारित कीं कि कब किसी अधिकरण को न्यायिक अधिकरण माना जा सकता है। अनेक निर्णयों, समुद्री सीमा शुल्क अधिनियम, 1878 के प्रासंगिक उपबंधों तथा उस अधिनियम में निहित न्यायनिर्णयन कार्यवाहियों की प्रकृति का उल्लेख करने के पश्चात् न्यायालय ने यह मत व्यक्त

किया कि अधिनियम के अधीन कार्य करने वाला न्यायनिर्णायक प्राधिकारी केवल जब्ती, शुल्क के निर्धारण, बढ़े हुए शुल्क के निर्धारण तथा अधिनियम द्वारा विनिर्दिष्ट दंड अधिरोपित करने के उद्देश्य से स्थापित एक प्रशासनिक तंत्र मात्र है और वह न्यायिक अधिकरण नहीं है। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :

> "हमारा मत है कि सीमा शुल्क प्राधिकारी न्यायिक अधिकरण नहीं हैं और समुद्री सीमा शुल्क अधिनियम के उपबंधों के अधीन की गई जब्ती, बढ़ी हुई शुल्क-दर अथवा दंड का अधिनिर्णयन ऐसा निर्णय अथवा आदेश नहीं है जो किसी न्यायालय अथवा न्यायिक अधिकरण द्वारा पारित किया गया हो और जो द्वितीय दंडन निषेध के प्रतिरक्षण का समर्थन करने के लिए आवश्यक हो।" "अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि जब सीमा शुल्क प्राधिकारियों ने विवादित स्वर्ण को जब्त किया, तब न तो सीमा शुल्क प्राधिकारियों के समक्ष चली कार्यवाही अपीलकर्ता के विरुद्ध अभियोजन थी और न ही जब्ती का आदेश ऐसा दंड था जो किसी न्यायालय अथवा न्यायिक अधिकरण द्वारा अपीलकर्ता पर अधिरोपित किया गया हो। सीमा शुल्क प्राधिकरण के समक्ष हुई उक्त कार्यवाही के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता को उसी अपराध के लिए 'अभियोजित और दंडित' किया गया था, जिसके लिए उसके विरुद्ध मुख्य प्रेसीडेंसी दंडाधिकारी, बम्बई के समक्ष विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम की धारा 23 के अधीन परिवाद प्रस्तुत किया गया था।"

इसके पश्चात् संविधान पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि समुद्री सीमा शुल्क अधिनियम के अधीन कार्य करने वाले प्रशासनिक प्राधिकारियों को अवैध रूप से देश में लाए गए स्वर्ण को जब्त करने तथा उल्लंघनकर्ता पर दंड अधिरोपित करने का क्षेत्राधिकार प्राप्त था, तथापि वे किसी आपराधिक मामले का विचारण नहीं कर रहे थे, बल्कि केवल अधिनियम के

अधीन आरोपित दायित्वों के उल्लंघन के परिणामों का निर्धारण कर रहे थे। इसी तर्क के आधार पर जो सिद्धांत समुद्री सीमा शुल्क अधिनियम के अधीन न्यायनिर्णायक व्यवस्था पर लागू होता है, वही विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 के अधीन स्थापित प्रशासनिक अथवा न्यायनिर्णायक व्यवस्था पर भी समान रूप से लागू होता है, जिसका उद्देश्य किसी वैधानिक दीवानी दायित्व के उल्लंघन का निर्धारण करना तथा उसके लिए दंड का उपबंध करना है। ऐसा उल्लंघन किसी दोषपूर्ण आशय से हुआ हो अथवा नहीं, यह अप्रासंगिक है।

"कॉर्पस ज्यूरिस सेकुन्डम", खंड 85, पृष्ठ 580, पैरा 1023 में इस प्रकार कहा गया है :

> "कर संबंधी चूक के लिए अधिरोपित दंड एक दीवानी दायित्व है, जो उपचारात्मक तथा बाध्यकारी प्रकृति का होता है और वह किसी अपराध अथवा दंड विधियों के उल्लंघन के लिए निर्धारित दंड, अर्थदंड अथवा समपहरण से पूर्णतः भिन्न है।"

हम उपर्युक्त दृष्टिकोण से सहमत हैं और हमारे मत में जो सिद्धांत "कर संबंधी चूक" पर लागू होता है, वही विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 के उपबंधों के उल्लंघन से उत्पन्न "दोषारोपण योग्य आचरण" पर भी समान रूप से लागू होता है।

अतः हम अभिनिर्धारित करते हैं कि दोषपूर्ण मनःस्थिति (जैसा कि उसे आपराधिक विधि में समझा जाता है) अधिनियम, 1947 की धारा 10 के उपबंधों के उल्लंघन के लिए किसी व्यक्ति को धारा 23(1)(क) के अधीन दंड का भागी ठहराने हेतु आवश्यक तत्व नहीं है। धारा 23(1)(क) के अधीन दंड उसी क्षण आकर्षित हो जाता है जब धारा 10(1)(क) द्वारा परिकल्पित वैधानिक दायित्व के उल्लंघन की स्थापना हो जाती है। उच्च न्यायालय स्पष्टतः इस त्रुटि में पड़ गया कि उसने अधिनियम के अधीन दोषारोपण योग्य आचरण को आपराधिक अपराध के समकक्ष मान लिया, जबकि यह दृष्टि से ओझल हो गया कि न्यायनिर्णायक कार्यवाही में दोषारोपण योग्य

आचरण केवल अधिनियम के अधीन किसी दीवानी दायित्व के उल्लंघन के प्रमाण से स्थापित हो जाता है। ऐसी स्थिति में उल्लंघनकर्ता धारा 23(1)(क) के अधीन अधिरोपित दंड का भुगतान करने के लिए बाध्य होता है, चाहे उसने वह उल्लंघन किसी दोषपूर्ण आशय के साथ किया हो अथवा उसके बिना। अतः हमारे द्वारा प्रतिपादित प्रथम प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है।

अब हम दूसरे प्रश्न पर विचार करते हैं। वर्तमान मामले में तथ्यों के संबंध में कोई विवाद नहीं है कि उत्तरदाताओं के स्वामित्व वाली विदेशी मुद्रा पंद्रह वर्षों से अधिक समय तक मलेशिया में पड़ी रही और उत्तरदाताओं ने उसे भारत में लाने के लिए कोई कदम अथवा प्रयास नहीं किया, जबकि उन्हें उस विदेशी मुद्रा को भारत में प्राप्त करने का अधिकार था। इस प्रकार वे भारत में विदेशी मुद्रा की प्राप्ति सुनिश्चित करने में विफल रहे। क्या इस कारण उत्तरदाताओं ने अधिनियम, 1947 की धारा 10(1)(क) का उल्लंघन किया, अथवा यह कहा जा सकता है कि जब तक उत्तरदाताओं ने धारा 10(2) के अधीन भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा दिए गए किसी निर्देश का उल्लंघन नहीं किया, तब तक धारा 10(1)(क) के अधीन अपराध नहीं माना जा सकता और धारा 23(1)(क) के अधीन दंड भी अधिरोपित नहीं किया जा सकता? यही वह मूल प्रश्न है जिसे हमने दूसरे प्रश्न के रूप में निर्धारित किया है।

हमारे मत में धारा 10(1) की योजना स्पष्ट रूप से यह इंगित करती है कि कोई भी व्यक्ति, जिसे विदेशी मुद्रा अथवा भारत में रुपये के रूप में उसके भुगतान को प्राप्त करने का अधिकार है, ऐसा कोई कार्य न करे अथवा करने से विरत न रहे, और न ही ऐसा कोई कदम उठाए अथवा उठाने से विरत रहे, जिसका परिणाम यह हो कि उस विदेशी मुद्रा अथवा उसके भुगतान की संपूर्ण या आंशिक प्राप्ति में विलंब हो जाए अथवा वह पूर्णतः समाप्त हो जाए, सिवाय इसके कि भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा उसे विशेष रूप से अथवा सामान्य निर्देश द्वारा ऐसा करने की अनुमति दी गई हो।

उल्लंघन उस समय पूर्ण हो जाता है जब विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का अधिकार उत्पन्न होने के पश्चात् उसे युक्तिसंगत अवधि के भीतर भारत में नहीं लाया जाता। “युक्तिसंगत अवधि” क्या होगी, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा और इस संबंध में कोई सामान्य सूत्र निर्धारित करना न तो संभव है और न ही वांछनीय। यदि विदेशी मुद्रा को भारत में लाने में हुआ विलंब अनुचित नहीं है, तो धारा 10(1)(क) का उल्लंघन नहीं माना जाएगा। धारा 10(1)(क) स्वयं ऐसा उल्लंघन सृजित करती है जो अधिनियम, 1947 की धारा 23(1) के अधीन दंडनीय है। धारा 10(2) एक पृथक और स्वतंत्र उल्लंघन का उपबंध करती है, जो उस स्थिति में उत्पन्न होता है जब भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा उस व्यक्ति को दिए गए निर्देशों की अवज्ञा की जाती है जिसने पहले ही धारा 10(1) का उल्लंघन कर लिया हो। यह उपधारा यह उपबंध करती है कि जहाँ कोई व्यक्ति विदेशी मुद्रा अथवा रुपये में भुगतान को भारत में लाने के संबंध में धारा 10(1) की आवश्यकताओं का पालन करने में विफल रहता है, वहाँ भारतीय रिज़र्व बैंक उसे ऐसे निर्देश दे सकता है जो विदेशी मुद्रा अथवा रुपये में भुगतान की प्राप्ति सुनिश्चित करने के उद्देश्य से उपयुक्त प्रतीत हों। उन निर्देशों का उल्लंघन भी अधिनियम, 1947 की धारा 23(1)(क) के अधीन दंड को आकर्षित करेगा। उपधारा (2) के प्रारंभिक शब्द— “जहाँ कोई व्यक्ति उपधारा (1) की आवश्यकताओं का पालन करने में विफल रहा हो...” स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि उपधारा (2) के अधीन निर्देश तभी दिए जा सकते हैं जब कोई व्यक्ति पहले ही धारा 10(1) का उल्लंघन कर चुका हो। अतः उपधारा (2) तभी लागू होती है जब उपधारा (1) का उल्लंघन स्थापित हो चुका हो। इसका अभिप्राय यह है कि उपधारा (1) का उल्लंघन एक स्वतंत्र अपराध है और यह उस पश्चातवर्ती उल्लंघन से पृथक है जो उपधारा (2) के अधीन जारी किसी आदेश या निर्देश की अवज्ञा से उत्पन्न हो सकता है। इसलिए उपधारा (2) के अधीन जारी निर्देशों का उल्लंघन, धारा 10(1) के अधीन अपराध को पूर्ण करने के लिए आवश्यक नहीं है। धारा 10 की उपधारा (1) और

(2) दो भिन्न परिस्थितियों से संबंधित हैं। अतः यह मानने का कोई आधार नहीं है कि धारा 10(1) के अधीन उल्लंघन तब तक संभव नहीं है जब तक धारा 10(2) के अधीन जारी निर्देशों का उल्लंघन न हुआ हो। दोनों उपधाराएँ भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कार्य करती हैं और उपधारा (2) के अधीन निर्देशों का जारी किया जाना तथा उन निर्देशों का उल्लंघन, धारा 10 की उपधारा (1) द्वारा परिकल्पित उल्लंघन की स्थापना के लिए अनिवार्य शर्त नहीं है। इसके विपरीत, धारा 10 की उपधारा (1) की आवश्यकताओं का अनुपालन न करना ही वह आधार है जिसके कारण भारतीय रिज़र्व बैंक को धारा 10 की उपधारा (2) के अधीन विशिष्ट अथवा सामान्य निर्देश जारी करने का अधिकार प्राप्त होता है। भारत में प्राप्त होने योग्य विदेशी मुद्रा को देश में वापस लाने का दायित्व एक वैधानिक दायित्व है और यह धारा 10 की उपधारा (2) के अधीन भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जारी किए जाने वाले किसी विशिष्ट निर्देश पर निर्भर नहीं करता।

धारा 10 की उपधारा (2) के अधिनियमन का उद्देश्य प्रतीत होता है कि धारा 10(1) के उल्लंघन के लिए दंडित किए जाने के पश्चात भी उल्लंघनकर्ता को भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा विदेशी मुद्रा को पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से भारत में वापस लाने का निर्देश दिया जा सके और यदि वह उन निर्देशों का पालन करने में विफल रहता है, तो वह विफलता स्वयं अधिनियम की धारा 23(1)(क) के अधीन दंड को आकर्षित करेगी, भले ही उसे विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 की धारा 10(1)(क) के उल्लंघन के लिए पहले ही दंडित किया जा चुका हो। धारा 10 की उपधारा (1) के अधीन दंड अधिरोपित किए जाने के बावजूद भारतीय रिज़र्व बैंक के पास विदेश में रखी गई विदेशी मुद्रा को भारत में वापस लाने आदि के संबंध में निर्देश जारी करने का अधिकार बना रहता है, क्योंकि विदेशी मुद्रा के लेन-देन को विनियमित करने की शक्ति, न्यायनिर्णायक कार्यवाही में उल्लंघनकर्ता पर कुछ दंड अधिरोपित कर दिए जाने मात्र से समाप्त नहीं हो जाती। विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 की धारा 23, धारा 4, धारा 5,

धारा 9, धारा 10, धारा 12 की उपधारा (2), धारा 17, धारा 18क अथवा धारा 18ख अथवा उनके अधीन बनाए गए किसी नियम, निर्देश या आदेश के उल्लंघन के लिए दंड का प्रावधान करती है। साधारण पठन से स्पष्ट है कि धारा 23(1)(क) अपने प्रयोग को धारा 10 की केवल किसी एक उपधारा तक सीमित नहीं करती। धारा 10 की दोनों उपधाराओं द्वारा परिकल्पित उल्लंघन धारा 23(1)(क) के अधीन दंड को आकर्षित करते हैं, जबकि धारा 12 के संबंध में केवल उसकी उपधारा (2) ही धारा 23(1)(क) के अधीन दंडनीय है। यदि विधायिका का उद्देश्य धारा 23(1)(क) के प्रयोग को धारा 10 की केवल एक उपधारा तक सीमित करना होता, तो वह स्वयं धारा में संबंधित उपधारा का स्पष्ट उल्लेख करके अपनी मंशा व्यक्त करती।

अतः हमारा मत है कि धारा 10 की उपधारा (1) का उल्लंघन धारा 23(1)(क) के अधीन दंड को आकर्षित करेगा तथा धारा 10 की उपधारा (1) का अनुपालन करने में विफल रहने के पश्चात भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा उपधारा (2) के अधीन जारी किए गए किसी भी निर्देश के उल्लंघन पर भी दंड अधिरोपित किया जा सकेगा, चाहे उस व्यक्ति पर धारा 10(1)(क) के उल्लंघन के लिए पहले ही दंड अधिरोपित किया जा चुका हो। उच्च न्यायालय ने, पूरे सम्मान के साथ कहें तो, यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की कि धारा 10 की उपधारा (1) का उल्लंघन तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक धारा 10 की उपधारा (2) के अधीन भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जारी निर्देशों का भी उल्लंघन न हो। ऐसी व्याख्या धारा 10 की उपधारा (2) की भाषा के प्रतिकूल है, अधिनियम के मूल उद्देश्य को विफल करती है तथा भारत में प्राप्त होने योग्य विदेशी मुद्रा को वापस लाने के वैधानिक दायित्व को अवैधानिक बनाकर उसे भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा विशिष्ट अथवा सामान्य निर्देश जारी किए जाने पर निर्भर कर देती है। अतः इस निर्णय के पूर्व भाग में निर्धारित दूसरे प्रश्न का उत्तर भी हम सकारात्मक रूप से देते हैं और अभिनिर्धारित करते हैं कि धारा 10 की उपधारा (1) के उल्लंघन की स्थापना के लिए यह सिद्ध करना आवश्यक नहीं

है कि उल्लंघनकर्ता ने भारत में प्राप्त होने योग्य विदेशी मुद्रा को वापस लाने के संबंध में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा धारा 10(2) के अधीन जारी किसी निर्देश की अवज्ञा की हो। उच्च न्यायालय द्वारा ग्रहण किया गया विपरीत दृष्टिकोण विधि-संगत नहीं है।

उपरोक्त दोनों प्रश्नों के संबंध में हमारे उत्तरों के आलोक में, इस अपील में आक्षेपित उच्च न्यायालय का निर्णय कायम नहीं रखा जा सकता और तदनुसार उसे निरस्त किया जाता है।

जहाँ तक दंड की राशि का प्रश्न है, अपीलीय बोर्ड ने, जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, प्रवर्तन निदेशालय द्वारा अधिरोपित दंड की राशि में संशोधन किया था। विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री तुलसी ने निवेदन किया कि अपीलकर्ता को कंपनी के प्रत्येक निदेशक के संबंध में संपूर्ण दंड राशि माफ किए जाने पर कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि उनमें से कुछ के इस न्यायालय में कार्यवाही लंबित रहने के दौरान निधन हो जाने की सूचना है। किन्तु उनका यह भी निवेदन था कि दोनों आरोपों के संबंध में कंपनी पर अधिरोपित दंड में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि विदेशी मुद्रा को भारत में वापस लाने में अत्यधिक विलंब हुआ है और उनके अनुसार आज तक भी वह विदेशी मुद्रा भारत में वापस नहीं लाई गई है। कंपनी की इस विफलता के कारण देश उन सभी वर्षों में उस विदेशी मुद्रा का उपयोग लोकहित की पूर्ति हेतु नहीं कर सका। उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य का खंडन नहीं किया कि मलेशिया से भारत में प्राप्त होने योग्य विदेशी मुद्रा आज तक वापस नहीं लाई गई है। अतः बार में किए गए निवेदनों को ध्यान में रखते हुए हम कंपनी के प्रत्येक निदेशक पर अधिरोपित दंड को निरस्त करते हैं, किन्तु अपीलीय बोर्ड द्वारा संशोधित रूप में कंपनी पर अधिरोपित दंड को यथावत् बनाए रखते हैं। फलतः यह अपील स्वीकार की जाती है और उपर्युक्त शर्तों के अनुसार अनुमत की जाती है। मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए, पक्षकार अपने-अपने व्यय स्वयं वहन करेंगे।

एम.के. अपील स्वीकार की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।